Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 7 ~ Issue 3 (2019) pp: 60-62
ISSN(Online) : 2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

धर्म और अध्यात्म

डॉ० रवीन्द्र त्रिपाठी

प्रधानाचार्य

अमर सिह उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बढया चौक गोरखपुर

धर्म और अध्यात्म — ऐसे दो महत्वपूर्ण शब्द है जो हर मनुष्य के अंतरंग विकास मार्ग के आधार-स्तंभ हैं। स्वयं के सत्-स्वरूप की अनुभूति के लिए इन दो शब्दों का विविध रूप से प्रयोग होता ही रहता है। यद्यपि समय के साथ ये शब्द अपनी मूल अभिव्यक्ति को खो देते हैं और उनके अर्थ में अनर्थ या विपरीत अर्थ भर जाते हैं जो मनुष्य को सत् पथ से गुमराह कर देते हैं तथापि हर काल और हर क्षेत्र में ऐसी प्रबुद्ध आत्माओं का आगमन होता है जो पुनः इन शब्दों में वास्तविक अर्थ भरते हैं। समय के इस बहते प्रवाह में धर्म और अध्यात्म जैसे ये मार्मिक शब्द आज भी अनर्थ और विपरीत अर्थ के चक्रव्यूह में फँसे हुए नज़र आते हैं परंतु मेरे जीवन के इस मिशन में मैंने पुनः इन शब्दों को इनके यथार्थ अर्थ से भरने की भरपूर कोशिश करी है।

'धर्म' शब्द का स्वरूप

आगम में धर्म की अनेक परिभाषाओं में से प्रमुख सूत्र है — 'वत्थु सहावो धम्मो:' यानि वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। चाहे वह वस्तु जड़ हो या चेतन, चर या अचर, नित्य या अनित्य परंतु उस वस्तु का उसके स्वभाव में रहना ही उसका धर्म है। जैसे जड़ जगत में अग्नि का स्वभाव है गर्माहट और पानी का स्वभाव है शीतलता, सूर्य का स्वभाव है तपन और चंद्र का स्वभाव है सौम्यता वैसे ही चेतन जगत में जीवात्मा और परमात्मा का स्वभाव है सत्-चित्त-आनंद। आत्मा और परमात्मा में भेद बस इतना ही है कि जीवात्मा को इस परम आनंद की अनुभूति नहीं है और परमात्मा अपने इस स्वभाव में सम्पूर्ण रूप से निमग्न हैं!

धर्म के बाह्य और अंतरंग रूप

मनुष्य के जीवन की समग्र खोज ही सुख की खोज है और वह भी ऐसे सुख की खोज जो अनंत और शाश्वत हो, उससे कम नहीं! यह अनंत और शाश्वत सुख को ही आनंद कहा जाता है जिसमें सुख की अनुभूति के लिए वस्तु-व्यक्ति-स्थिति का आधार या गुलामी नहीं होती। अकारण बहता आनंद ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है और इसकी अनुभूति करने का मार्ग ही धर्म-मार्ग कहा जाता है। इस मार्ग के पुनः दो रूप हैं — बाह्य व अंतरंग। बाह्य रूप को धर्म-संप्रदाय कहा जाता है और अंतरंग रूप को अध्यात्म कहा जाता है। बाह्य व अंतरंग रूप के समन्वय से ही धर्म का मूल स्वरूप प्रकट हो सकता है। किसी भी एक रूप को ही सर्वस्व मान लेने से मनुष्य पूर्णता की अनुभूति से दूर रह जाता है।

बाह्य व अंतरंग रूप का समन्वय कब तक?

जैसे हम सभी नारियल फल का बाह्य रूप भी जानते हैं और अंतरंग रूप भी और अच्छी तरह से जानते हैं कि दोनों का समन्वय ही नारियल कहलाता है। पर जब हम नारियल के गोले को खाते हैं, उसके गुण व स्वाद से परिचित हो जाते हैं उसके बाद बाह्य रूप की अनिवार्यता नहीं रहती। बाह्य रूप हो तो आपत्ति भी नहीं परंतु बाह्य रूप होना ही चाहिए ऐसा कोई आग्रह नहीं रह जाता। ठीक इसी प्रकार से — संप्रदाय धर्म का बाह्य स्वरूप है परंतु अध्यात्म उसकी अंतरंग दृष्टि है जिसमें गुण-विकास का मार्ग

और आत्म-अनुभूति का स्वाद है। जैसे-जैसे गुण-विकास और आत्मिक अनुभूति बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे संप्रदाय की अनिवार्यता नहीं रहती। सांप्रदायिक रीति-रिवाज़, कर्म-काण्ड होते हो तो आपत्ति भी नहीं होती परंतु उनके बिना गुण-विकास व आत्म वैभव प्रकटता ही नहीं — ऐसा मिथ्या निर्णय नहीं होता। जब गुण-विकास और आत्मिक अनुभूति प्रगाढ़ होने लगते हैं तब संप्रदाय के आग्रह स्वयं ही छूट जाते हैं।

संप्रदाय : क्रिया-काण्ड, मंत्र जप, तप, तीर्थ निर्माण और यात्रा आदि अनेक क्रियाओं को संप्रदाय का मूल आधार माना जाता है।

अध्यात्म : सांप्रदायिक प्रवृत्ति को करते करते अपनी प्रकृति को कैसे बदलें यह संप्रदाय का मूल आधार है।

संप्रदाय : संप्रदाय के अंतर्गत हर मनुष्य बँटा हुआ है जैसे हिंदू, जैन, बौद्ध इत्यादि।

अध्यात्म : अध्यात्म में जन्म-जात संप्रदाय की महत्ता नहीं होने से यह जन-जन को संयुक्त करता है।

संप्रदाय : संप्रदाय का जन्म ही तब होता है जब उपस्थित सद्गुरू का देह त्याग हो जाता है।

अध्यात्म : अध्यात्म का उघाड़ ही तब होता है जब श्री गुरु सजीवन हो।

संप्रदाय : संप्रदाय की रीत में मनुष्य में रहे भय और लोभ के आधार पर गुण विकास करवाने का लक्ष्य होता है। जैसे — हमें पाप नहीं करने चाहिए इससे नर्क जाना पड़ता है। इस भय के कारण पाप करने से अटकाया है।

अध्यात्म : अध्यात्म में मनुष्य के भीतर स्वरूप की यथार्थ समझ होने के कारण जीव मात्र के प्रति प्रेम प्रकटता है जिससे स्वतः ही अनुचित कर्म होना बंद हो जाते हैं।

संप्रदाय : संप्रदाय के नाम पर मनुष्य में भेद-भाव, झगड़े आदि होते हैं क्योंकि धर्म-शास्त्रों के अशुद्ध व भ्रांति-पूर्ण अर्थ का आग्रह हो जाता है।

अध्यात्म : अध्यात्म स्वरूप की वास्तविक समझ देता है और शास्त्रों के यथार्थ अर्थ श्री गुरु के माध्यम से उघड़ते हैं। परिणाम स्वरूप भेद-भाव, झगड़े और भ्रांति टलती है।

संप्रदाय : हर संप्रदाय में कर्म-सिद्धांत की अनूठी शैली होती ही है परंतु संप्रदाय में कर्म की अपेक्षा से मनुष्य सदा ही भूत-क़ालीन कर्मों का ग़ुलाम बना रहता है।

अध्यात्म : अध्यात्म उस कर्म-सिद्धांत को प्रमुख करती है जिसमें मनुष्य स्वयं के कर्मों का मालिक हो कर अपने भविष्य का निर्माण करता है।

संप्रदाय : संप्रदाय में ईश्वर और भगवान के स्वरूप की कोई स्पष्टता ही नहीं होती। अधिकांशतः इन्हें पर्यायवाची ही मान लिया जाता है।

अध्यात्म : अध्यात्म मार्ग में ईश्वर, भगवान, आत्मा आदि मूलभूत शब्दों की भिन्नता और स्पष्टता सम्पूर्ण रूप से होती है।

संप्रदाय : संप्रदाय में ईश्वर, परमात्मा, भगवान हमेशा मूर्तियों में ही माने जाते हैं।

अध्यात्म : अध्यात्म में ईश्वर, परमात्मा, भगवान मनुष्य के भीतर ही माने जाते हैं।

संप्रदाय : संप्रदाय क्या करना है यह बताते हैं।

अध्यात्म : अध्यात्म कैसे और क्यों करना है यह बताता है।

संप्रदाय : किसी-न-किसी धर्म संप्रदाय में मनुष्य का जन्म होना अनिवार्य है।

अध्यात्म : अध्यात्म मार्ग हर मनुष्य का अपना मौलिक चुनाव होता है।

संप्रदाय : संप्रदायिक क्रियाओं में भूतकाल में हुई शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्माओं की पूजा, शृंगार आदि में ही धर्म माना जाता है।

अध्यात्म : अध्यात्म में वर्तमान में अपनी भूल को देख कर उसमें सुधार का कार्य किया जाता है। मुक्त आत्माओं का स्वरूप समझ कर उन जैसा होने का यत्न ही अध्यात्म मार्ग है।

संप्रदाय : संप्रदाय के क्रिया-काण्ड मनुष्य को अशुभ प्रवृत्ति करने से अटकाते हैं और शुभ प्रवृत्ति में जोड़ते हैं — यह संप्रदाय का अनूठा योगदान है।

अध्यात्म : अध्यात्म में समग्र प्रयास आंतरिक शुद्धता को प्रकटाने का होता है जिसमें शुभ क्रिया अथवा तत्त्व-चिंतन का आश्रय लिया जाता है।

संप्रदाय : संप्रदाय की विविधता की उपमा — एक माला में पिरोए गए अलग-अलग मोती से होती हैं।
अध्यात्म : अध्यात्म की उपमा — विविध मोतियों की माला को जोड़ने वाले धागे से होती है।
संप्रदाय : संप्रदाय का संपूर्ण लक्ष्य पुण्य संग्रह और प्रवृत्ति में बदलाव का होता है।
अध्यात्म : अध्यात्म का संपूर्ण लक्ष्य गुण-विकास और निज अनुभूति ही होता है।
संप्रदाय : संप्रदाय किसी को दुःख नहीं देने का सुझाव देते हैं और इसी बात का प्रचार भी करते हैं।
अध्यात्म : अध्यात्म में स्वरूप की समझ होने से किसी से दुखी नहीं होने की मनोदशा का निर्माण होता है।

संप्रदाय आरम्भ है, अंत नहीं

संप्रदाय और अध्यात्म के बीच रहे इन मूलभूत भेद को समझने के पश्चात हमें स्वयं से स्वयं में देखना होगा कि हम किस जगह पर खड़े है। मेरे अनुभव में इस समय में कहलाती आध्यात्मिक संस्थाएँ भी कहीं न कहीं सांप्रदायिकता का रूप लेती जा रही है। कारण — स्वरूप की नासमझ और अपने मत का आग्रह। किसी न किसी धर्म संप्रदाय में जन्म लेने से हम धार्मिक नहीं हो जाते परंतु संप्रदाय के बाह्य रूप में जब आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अंतरंग रूप सम्मिलित होता है तभी से 'धर्म' का आरम्भ होता है और परिभ्रमण का प्रत्याख्यान होता है। इस से पूर्व सभी कुछ शुभ कर्म हो सकते हैं परंतु धर्म नहीं और इसलिए परिभ्रमण की परंपरा चलती ही रहती है।